RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-10
October-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i10.034

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में प्रतिबिंबित राजनीतिक चेतना

योगेश कुमार सिंह

शोधार्थी, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविधालय

1952 में पहले आम चुनाव के बाद देश में एक राजनीतिक माहौल कायम हो चुका था। हर ओर वोट की राजनीति शुरू हो गई थी। नेताओं की लालसा समाज में जहर घोलने का काम इस प्रकार कर रही थी किविकास की गति और सुनहरे भविष्य के सपनोंकी राहें धीरे-धीरे धुंधली पड़ने लगी थी। हिन्दू-मुस्लिम के रिश्तों में दरार डालने का काम स्वार्थी नेताओं ने किया। इन्होंने अपने निजी हितों को सर्वोपरी रखते हुए दोनों धर्मों के अंदर ऐसी भावनाएं जगाई कि दोनों के रिश्तों में कटुता आ गई। भैरव लाल गर्ग कहते हैं कि- "देश की स्वतंत्रता के साथ जिन नेताओं के हाथों में देश की बागडोर सौंपी गई वे स्वयं अपने दायित्वों से हट गए। अब तक सच्चरित्रसाधु समझ लोग जिनकी पूजा कर रहे थे, वेदुराचारी, स्वार्थलोलुप और घूसखोर बन गए। चारों तरफ जातिवाद, काला बाजार और स्वार्थपरता का साम्राज्य फैल गया। आशावादी भारतीय समाज का भ्रम टूटा, अपनों से हम पराए हो गए।"[1]

स्वतंत्र भारत में सुनहरे सपनों, आशा-आकांक्षाओं और विकास के बदले हर तरफनेताओं का स्वार्थ विकसित हो रहा था। ऐसे समय में भारत की प्रगति को कहां तक आंका जा सकता था? भ्रष्टाचार ने अपना रूप दिखाना शुरू कर दिया था और भारतीय जनता भारतीय नेताओं के वादों में उलझ कर अपना दम तोड़ रही थी। एस. एल. जोशीकहते हैं- "समाज में भ्रष्टाचार की व्यापकता के कई कारण बताए जाते हैं। इनमें से कुछ कारण आर्थिक हैं और कुछ सामाजिक तथासांस्कृतिक बढ़ती हुई आर्थिक आवश्यकताएं मध्यम वर्ग के हौसले, भाई-भतीजावाद, कमजोर कानून व्यवस्था, शक्ति थोड़े लोगों में केंद्रित, आम लोगों का पिछड़ापन और भ्रष्ट विभाग।"[2] दरअसल जब शक्ति एक जगह केंद्रित हो जाती है तो वहांपर भ्रष्टाचार का पनपना संभावित है। इस राजनीतिक खेल से भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों पर भी बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा, साथ ही साहित्य भी इससे अप्रभावित न रहा। भारतीय साहित्यकारों ने इन राजनीतिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुए साहित्य रचा। नाटककारों ने भी अपने नाटकों में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों और प्रभावों की झलक पेश की।

भारत की आजादी के बहुत पहले से ही राजनीतिक नाटक लिखे जा रहे थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित नाटक 'विषस्य विषमौषधम्' व्यभिचारी हो चुके शासक और उसके शासन-व्यवस्था के संदर्भ में लिखा गया नाटक है।उनका अन्य नाटक'वैदिकी हिन्सा न भवति' में ऐसे लोगों का चित्रण है जो अंग्रेजों के साथ मिलकर उनके भक्ति भाव में लीन हैं। यानी भारतेंदुयुग का नाट्य साहित्य व्यापक स्तर पर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से सामग्री लेकर अग्रसर हुआ है। इस युग में सामाजिक, राजनीतिकएवं धार्मिक समस्याओं का निरूपण हुआ है। भारतेंदु के समकालीन नाटककारों मेंबालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित नाटक 'वेणुसंहार',प्रताप नारायण मिश्र द्वारा रचित 'भारत दुर्दशा' और 'गो संकट', अंबिकादत्त व्यास द्वारा रचित 'भारत सौभाग्य', गोपाल राम गहमरी द्वारा रचित 'देश दशा'और देवकीनंदन त्रिपाठी द्वारा रचित 'भारत हरण' आदि नाटकों में अंग्रेजी व्यवस्था के दमनीय चेहरे में राजनीति और सत्ता की वास्तविकता को परोक्ष ढंग से अंकित किया है। भारतेंदु और उनके समकालीन नाटककारों ने सामाजिक नाटकों की रचना तो की ही साथ में राजनीतिक नाटक भी उनके द्वारा लिखे गए।

आगे आने वाले समय में द्विवेदी युग में हिन्दी नाटकों का विकास थोड़ा धीमा प्रतीत होता है।इस युग मेंसंस्कृत, अंग्रेजी और बांग्ला नाटकों के अनुवाद ही अधिक हुए और राजनीतिक नाटकों के नाम पर जीवानंद शर्मा द्वारा रचित- 'भारत विजय' (1906),कृष्णानंद जोशी द्वारा रचित 'उन्नति कहां से होगी' (1915) आदि नाटक ही सामने आते हैं।

प्रसाद युग में राजनीतिक विसंगतियों को नाटककारों ने अपने नाटक का विषय बनाया। प्रसाद द्वारा रचित 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त' नाटकों में ऐतिहासिक पटल पर राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण हुआ। लगभग यही स्थिति इस काल के अन्य नाटककारों की भी बनी रही।प्रसाद युग के नाटककारों अप्रत्यक्ष ढंग से राजनीति की अंतरधाराओं को नाटकों के विषय के रूप में चुना।

स्वातंत्र्योत्तर काल मेंहिन्दीनाट्य साहित्य के अंतर्गत राजनीति को प्रश्रय देने वालों में जगदीश चंद्र माथुर का नाम सराहनीय रहा है। जगदीश चंद्र माथुर ने अपने नाटक 'कोणार्क' (1952) मेंशासक और कलाकार के संघर्षों को चित्रित किया। इस नाटक का मुख्य पात्र कलाकार 'विशु' है जो दमनिय राजनीतिक व्यवस्था का शिकार बनता है। 'कोणार्क' नाटक नेहिन्दीमें आधुनिक युग बोध को शुरू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह नाटक राजसत्ता के शोषण और विद्रोह की समस्या को चित्रित करता है, साथ ही कलाकार की स्थिति को भी चिन्हित करता है। माथुर जी का 'शारदीया'और 'पहला राजा' में भी राजनीतिक विसंगतियों और शोषणकारीनीतियों से पर्दा हटाया गया है।

हिन्दी नाटकों में धर्मवीर भारती का'अंधा युग' भी खास स्थान रखता है। यहएक गीतिनाट्य है, जिसमें महाभारत कालीन पौराणिक मिथकको आधार बनाया गया है। किन्तु साथ ही अठारह दिनों तक चलने वाले युद्ध के दौरान की परिस्थितियों और युद्ध के

---

[1] भैरव लाल गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में सामाजिक परिवर्तन पृष्ठ 59

[2] एस. एल. जोशी,भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, पृष्ठ 419

बाद होने वाले परिणामों की अभिव्यक्ति के क्रम में सत्ता की विद्रूपताओं, सत्तासीनों के निजी स्वार्थ और खोखलापन तथा दो प्रहरियों के रूप में जनता की स्थिति का भी बयान किया है।

इसी प्रकार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'रक्त कमल' (1963) एक प्रतीकात्मक नाटक है। जिसमें युग की यथार्थ राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। नाटककार ने प्रतीकात्मक रूप से देश की बिगड़ी हुई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक दशा एवं मूल्यहीनता का अंकन किया है। 'मिस्टर अभिमन्यु'(1971) डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का एक मिथकीय नाटक है। इसमें महाभारत के अभिमन्यु की करुण त्रासदी के माध्यम से वर्तमान युग की विसंगत परिस्थितियों में जीने वाले मनुष्य की विडंबनात्मक स्थिति को निरूपित किया है। यह नाटक समसामयिक राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कृत 'बकरी' (1974) भी एक राजनीतिक व्यंग्य नाटक है, जिसमें समकालीन राजनीति के छद्म और जनविरोधी चरित्रों के द्वारा राजनीति में हो रहे तमाम भ्रष्टाचार एवं स्वार्थी व्यक्तियों की मनोवृति को व्यक्त किया गया है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का ही नाटक 'लड़ाई' और'अब गरीबी हटाओ'में भी राजनीतिक तत्व प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। आजादी के बाद राजनीति को आधार बनाकर बहुत सारे नाटक लिखे गए, कुछ नाटक तो अलग विषयों पर लिखे गए लेकिन उनमें भी किसी ना किसी प्रकार से राजनीतिक तत्व आ ही गया। इनमें डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल के'यज्ञ प्रश्न', 'रक्त कमल', 'अब्दुल्ला दीवाना', 'राम की लड़ाई', 'पंच पुरुष', सुशील कुमार सिंह के'सिंहासन खाली है', 'नागपाश', 'आज नहीं तो कल', 'अंधेरे के स्वामी', 'बापू की हत्या हजारवीं बार', शंकर शेष के नाटक 'कालजयी', 'एक और द्रोणाचार्य', 'राक्षस', 'पोस्टर', मणि मधुकर के'रसगंधर्व', 'दुलारी बाई', ज्ञानदेव अग्निहोत्री के'वतन की आबरू', 'नेफा की एक शाम', 'चिराग जल उठा', 'दंगा', मुद्राराक्षस के'मरजीवा', 'तेंदुआ', 'डाकू','आला अफसर', गिरिराज किशोर का– 'प्रजा ही रहने दो', 'चेहरे चेहरे किसके चेहरे', तथा 'काठ की तोप' भीष्म साहनी के'हानूश', 'कबिरा खड़ा बाजार में', 'माधवी', 'मुआवजे', 'रंग दे बसंती चोला' तथा 'आलमगीर', नरेंद्र कोहली के'शंबूक की हत्या', तथा 'हत्यारे', कुसुम कुमार के'दिल्ली ऊंचा सुनती है', 'संस्कार को नमस्कार' प्रभाकर क्षेत्रीय का 'इला', सुरेंद्र वर्मा के'छोटे सैयद बड़े सैयद', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', अमृत नाहटा का 'किस्सा कुर्सी का', काशीनाथ सिंह का 'घोआस',और नंदकिशोर आचार्य के'देहांतपुर', 'हस्तिनापुर', 'पागल घर', 'किसी और का सपना'।दया प्रकाश सिन्हा के'कथा एक कंस की', 'सीढ़ियां' तथा 'इतिहास', स्वदेश दीपक का 'सबसे उदास कविता' आदि उल्लेखनीय नाटक हैं, जिनमें किसी ना किसी रूप में राजनीतिक धरातल का स्पर्श है।

स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने राजनीति के विसंगत चरित्रों, नेताओं की सत्ता आकांक्षा, जातिगत एवं सांप्रदायिक विद्वेष, राजनीतिक मूल्यहीनता, समसामयिक राजनीति के कुत्सित चरित्र, न्याय प्रक्रिया में सत्ता पक्ष के हस्तक्षेप, गांधीवादी मूल्यों के नाम पर व्याप्त विकृतियों, आम आदमी में व्यवस्था के प्रति मोह भंग तथा राजनीति के प्रति उदासीनता आदि को रेखांकित करने के साथ–साथ उनसे निपटने के लिए ना केवल प्रोत्साहित करते हैं अपितु मार्गदर्शन भी प्रदान करते हैं।

राजनीतिक नाटकों में राजनीतिक चेतना की प्रबलता रहती है, लेकिन फिर भी समाज की अनुभूतियां इसके साथ जुड़ी रहती है। आज का समाज और हमारा जीवन राजनीति के इर्द–गिर्द घूमता है और राजनीति से प्रभावित होता है। अतः इसी कारण समकालीन नाटकों में राजनीति का समावेश स्वभाविक है। डॉ. सीताराम झा बताते हैं– "वर्तमान परिवेश को केंद्र बनाकर लिखे गए नाटकों में शासकीय और न्यायिक विधानों, लोकप्रिय राजनीति के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव, मंत्रिमंडल, पुलिस विभाग के भ्रष्ट आचरण राजनीति की खोखली आंतरिक व्यवस्था और उसके परिणामस्वरूप खंडित होती राष्ट्रीय एकता आदि की व्यंजना हुई है।"[3]

वस्तुतः देश कोराजनीतिक आजादी तो बहुत पहले मिल गईकिन्तुसामाजिक और आर्थिक आजादीकी रूपरेखा हम सालों–साल गढ़ नहीं पाए। सिर्फ राजनीतिक आजादी से लोगों का पेट नहीं भरता, किसी भी व्यक्ति को रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता होती है।ये व्यक्ति की मूलभूत जरूरतें हैं। उपनिवेशवाद ने हमारी आंखों में ऐसे सपने भर दिए, जिससे हम सपनों के लोक में ही खोए रहे। नेताओं के बड़े–बड़े वादे– विश्वगुरु बनना, महाशक्ति बनना, बड़ी–बड़ी मशीनों का लाना, आदि धरे के धरे रह गए। हमें भी ऐसा कीड़ा काट चुका था कि हम नेताओं के वादों में ही उलझ के रह गए। स्वतंत्रता के बाद भारत को एकबिखरी अर्थव्यवस्था, व्यापकनिरक्षरता और चौंकाने वाली गरीबी का सामना करना पड़ा।

भारत, जिसे सोने की चिड़िया कहा जाता था, जिसका एक गौरवशाली इतिहास था उसी देश के आम आदमी का जीवन इतना दयनीय क्यों रहा? यह विचारणीय प्रश्न है। दरअसल, जीवन पथ में आगे बढ़ने के लिए बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता होती है, इतिहास गवाह है जन–विश्वास सैन्य बल की अपेक्षा बुद्धि बल से जीता जाता है। किसी भी देश की उन्नति अथवा अवनति में कूटनीति एवं राजनीति अहम भूमिका अदा करते हैं। इस काल के नाटककारों ने अपने समय और समाज से सीधा साक्षात्कार किया। नाटककारों ने अपने नाटकों के विषय के रूप में अपने आसपास की घटनाओं को महत्व देना आरंभ किया। "कथानक और चरित्र सृष्टि में नाटककार ने प्राचीन मानदंडों के कटघरे से निकलकर युगीन जीवन को अपना कथ्य बनाया। अब कोई आदर्शपूर्णकथा या महान चरित्रहीन नाटक का कलेवर नहीं बन सकते थे। वर्तमान जीवन की विसंगति, परिस्थितियों और अंतःसंघर्ष में टूटता सामान्य मनुष्य ही नाटककार का लक्ष्य बन गया। बाह्य संघर्ष की अपेक्षा अंतर्द्वंद, समाधान की अपेक्षा विचलित करने वाले प्रश्न, लोक ग्राह्यता की अपेक्षा वैयक्तिक की विशिष्टता और महान व्यक्तित्व की अपेक्षा खंडित पराजित एवं संघर्षरत मानव का चित्रण नवोन्मेष नाटक की विशेषताएं हैं।"[4]

---

[3] डॉ॰सीताराम झा, हिंदी नाटकः समाजशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ 311

[4] डॉ.रीता कुमार, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकः मोहन राकेश के संदर्भ में, पृष्ठ 21

स्वतंत्रता के बाद के नाट्य साहित्य में प्रौढ़ता देखने को मिली। भारतीय नाट्य साहित्य में पाश्चात्य नाट्य शैली का प्रभाव बढ़ा और नाट्य शिल्प के दृष्टिकोण से एक क्रांतिकारी परिवर्तन आरंभ हुआ। स्वतंत्रता के बाद देश–विदेश की राजनीति में भी काफी परिवर्तन आए। सन्1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद अब तक साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन धीमा हो चुका था पर नाटकों में उठाई गई विभिन्न समस्याएं और उस पर विचार करने की प्रवृत्ति की गति स्थिर रही। इन्हीं परिस्थितियों में नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में एक नए युग की नींव डलनी आरंभ हुई।

हिन्दी नाटक दशक–दर–दशक परिवर्तनों के दौर से गुजरता रहा। प्रत्येक काल के नाटककारों ने कभी गंभीरता और कभी व्यंग्य की धार से राजनीति में व्याप्त विसंगतियों, विकृतियों और विडंबनाओं का प्रतिरोध किया। नई चेतना का परिचय दिया। इन नाटककारों ने सत्ता–विमर्श के सवालों को उठाया, जिससे पहले एवं बाद के नाटकों में विषय एवं शिल्प की दृष्टि से भारी अंतर देखा गया। स्वातंत्र्योत्तर नाटककार अपनी वस्तु का चुनाव अपने आस-पास के समाज और आमजन से जुड़े सरोकारों से करने लगे।